प्राचीन भारत में स्तूपों का विकासः भरहुत एवं सांची के विशेष संदर्भ में

डॉ० आयशा फातमी*

महात्मा बुद्ध एवं बौद्ध धर्म से संबंधित घटनाओं, उनके उपदेशों के प्रचार, बौद्ध अनुयायियों की धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति, जनमानस में बुद्ध धर्म के प्रसार तथा उसे विकास की उन्नत अवस्था तक पहुंचाने में 'बौद्ध स्तूपों' की अतीव महत्ता रही है। यह सत्य है कि प्रायः स्तूप को एक बौद्ध वास्तु समझा जाता है किन्तु स्तूप की परम्परा बुद्ध तथा बौद्ध धर्म से भी प्राचीन है। ऋग्वेद में स्तूपों के विवरण से महात्मा बुद्ध के पूर्व तक इसकी प्राचीनता ज्ञात होती है। वैदिक काल से ही मृत व्यक्ति के अस्थि अवशेष पर मिट्टी का थूहा बनाने का प्रचलन था। आनंद के पूछने पर स्वयं बुद्ध ने कहा था कि उनके अस्थि अवशेष चौराहे पर उसी प्रकार समाधिस्थ किये जाये जिस प्रकार चक्रवर्ती सम्राट के अस्थि अवशेष दफनाए जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि चक्रवर्ती सम्राटों के लिये भी स्तूप बनाए जाते थे और बुद्ध से पहले भी स्तूप बनाने की परम्परा थी। बौद्ध धर्म में ये प्रथा विशेष लोकप्रिय हो गई। कालान्तर में स्तूप का संबंध बुद्ध, बौद्ध धर्म के महान व्यक्तियों और विशिष्ट आचार्यों आदि के सम्मान में निर्मित स्मारक से हो गया।

बौद्ध परम्परा के अनुसार बुद्ध के निर्वाण के पश्चात उत्तर भारत के तत्कालीन शासकों और एक ब्राह्मण ने अवशिष्ट अस्थियों तथा भस्म आदि के आठ भाग किये और प्रत्येक के ऊपर स्तूप का निर्माण कराया। इनका उल्लेख इस प्रकार है– 1. मगध नरेश अजातशत्रु, 2. वैशाली के लिच्छवि, 3. कपिलवस्तु के शाक्य, 4. अल्लकप्प के बुलिय, 5. रामगाम के कोलिय, 6. पावा के मल्ल, 7. कुशीनारा के मल्ल, 8. वेदपीठ का एक ब्राह्मण। ये स्तूप बुद्ध की मृत्यु के तुरंत बाद अस्तित्व में आ गये। दिव्यावदान से ऐसा आभासित होता है कि केश–नख युक्त स्तूपों का निर्माण बुद्ध के जीवन काल में ही होने लगा था। जेतवन में जब बौद्ध संघ ने स्मारक बनवाने के लिये तथागत से कुछ चिन्ह चाहे तब महामानव बुद्ध ने उन्हें अपने केश और नख दे दिये। इन्हीं केश और नखों पर संघ ने स्तूप प्रतिष्ठापित कराया। बिम्बिसार ने भी अंतःपुर में पूजा हेतु केश–नख स्तूप की प्रतिष्ठापना की थी। यद्यपि विद्वान ऐसा मानते हैं कि स्तूप का निर्माण और पूजन बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद ही प्रारम्भ हुआ तथा बुद्ध का महापरिनिर्वाण बिम्बिसार की मृत्यु के 8 वर्ष बाद हुआ था। उपर्युक्त आरम्भिक स्तूपों में अस्थि धातु थी परन्तु केशनख स्तूपों का निर्माण कदाचित् महापरिनिर्वाण के पहले ही प्रारम्भ हो गया था। धातुपात्र होने के कारण स्तूप धीरे–धीरे गौतम बुद्ध के प्रतीक माने जाने लगे और बौद्ध धर्म के अनुयायियों की स्तूप के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति भावना बढ़ने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि बुद्ध की शरीर धातु, भस्म, केश, दंत आदि के अतिरिक्त बुद्ध द्वारा प्रयुक्त वस्तुओं जैसे भिक्षापात्र एवं वस्त्र आदि को रखने के लिये भी स्तूप का निर्माण होने लगा। बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं जन्म, संबोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन तथा निर्वाण से संबंधित स्थानों पर भी स्तूपों का निर्माण होने लगा। कालान्तर में ऐसे छोटे–छोटे स्तूप भी निर्मित हुए जिनमें किसी प्रकार की शरीर धातु अथवा अवशेष नहीं होते थे किन्तु बुद्ध का प्रतीक मानकर इनकी पूजा की जाती थी। ये अपेक्षाकृत आकार में छोटे होते थे। इस प्रकार स्तूप के चार भेद हो गये–

1.शारीरिक स्तूप– वे स्तूप जिनमें महात्मा बुद्ध अथवा उनके प्रमुख शिष्यों सारिपुत्र, मोग्गलान एवं आनंद आदि, प्रमुख आचार्यों एवं भिक्षुओं के शारीरिक अवशेषों केश, नख, दाँत आदि संग्रहीत किये गये थे, शारीरिक स्तूप कहलाए। पिपरहवा में पाया गया बौद्ध स्तूप इसी कोटि का था। इसमें बुद्ध की अस्थियों वाला कलश पाया गया था। साँची के स्तूप संख्या 2 से दो प्रस्तर की अस्थि पेटिकाए मिली थीं जिनमें दस बौद्ध भिक्षुओं के नाम हैं। स्तूप संख्या– 3 में सारिपुत्त और मोग्गलान के अस्थि अवशेष कनिंघम को प्राप्त हुए थे।

2.पारिभौगिक स्तूप– इस कोटि में वे स्तूप आते हैं जिनमे बुद्ध के द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली वस्तुए संग्रहीत की गई थी जैसे उनकी पादुका, छड़ी, भिक्षापात्र, चीवर एवं संघाटी आदि। सातवी शती ई0 में भारत की यात्रा पर आए चीनी बौद्ध यात्री ह्वेनसांग ने इस प्रकार के अनेक स्तूपों का उल्लेख किया था।

3.उद्देशिक स्तूप– बौद्ध धर्म के किसी आख्यान, बुद्ध के जीवन की घटनाओं अथवा उनकी उपस्थिति से पवित्र हुए स्थानों पर स्मारक स्वरूप जो स्तूप बनवाए गये वे उद्देशिक स्तूप कहलाए। बौद्ध धर्म से संबंधित महत्वपूर्ण पवित्र स्थलों में से निम्नलिखित विशिष्ट महत्व रखते हैं–

1. लुम्बिनी – बुद्ध का जन्म
2. बोधगया – ज्ञान प्राप्ति
3. सारनाथ–बुद्ध द्वारा प्रथम उपदेश (धर्मचक्रप्रवर्तन)
4. कुशीनगर– बुद्ध के महापरिनिर्वाण का स्थान

इन चारों स्थलों को बौद्ध धर्म के अनुयायियों ने स्तूपों से सुसज्जित किया। विश्व भर के बौद्ध धर्मावलम्बी इन स्थानों को पवित्र मानते हैं।

4. पूजार्थक अथवा संकल्पित स्तूपः– प्रायः एक ही पत्थर के टुकड़े से निर्मित ये स्तूप आकार में छोटे होते थे जिन्हें

*एसो०प्रो० प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व नारी शिक्षा निकेतन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ

भक्तिभाव से धनाढ्य बौद्ध अनुयायी बौद्ध तीर्थों पर बनवा देते थे। जो निर्धन तीर्थ यात्री पूजार्थक स्तूपों का निर्माण नहीं करा सकते थे, वे मिट्टी तथा पत्थर की पट्टिकाओं पर 'ये धर्मा हेतु प्रभवा एवं वादी महाश्रमण :' अंकित कर दान कर देते थे।

बौद्ध परम्परानुसार प्रथमतः आठ स्थानों पर जो शारीरिक स्तूप बनाए गये थे उनमें कपिलवस्तु में बनाए गये स्तूप के भग्नावशेष उ0प्र0 के बस्ती जिले में स्थित पिपरहवा नामक स्थान से मिले हैं जिनकी सर्वप्रथम खोज डब्ल्यू.सी. पेप्पे ने 1897–98 में की थी। इसमें एक प्रस्तर पेटिका में चार अस्थि कलश मिले थे और ब्राहमी लिपि में एक लेख भी अंकित है जिसका शब्दार्थ है–"बुद्ध भगवान शाक्य के इस शरीर धातु मन्जूषा निधान) को सुकृति बन्धुओं ने अपनी बहन, पुत्र और पत्नी के साथ (प्रतिष्ठापित) किया"। इसके आधार पर व्यूलर और रीज़ डेविड्स ने इसमें स्वयं बुद्ध की अस्थियां मानी थी। किन्तु फ्लीट महोदय इसे बुद्ध के परिजनों की अस्थियां मानते हैं।

कौशाम्बी के उत्खनन से घोषिताराम बिहार में चैत्य के भीतर चौकोर योजना वाला स्तूप मिला है। यह स्तूप पहली बार पाँचवी शती ई0पू0 में बुद्ध के निर्वाण के बाद ही बनाया गया होगा जिसे अशोक ने बाद में संवर्धित किया।

बौद्ध मान्यतानुसार अशोक ने 84000 स्तूपों का निर्माण कराया था, जिनमें से कुछ का ही पता चल पाया है जो साँची, सारनाथ तथा तक्षशिला आदि स्थानों में स्थित थे। चीनी यात्री फाह्यान तथा ह्वेनसांग ने तक्षशिला, स्थानेश्वर, मथुरा, कन्नौज, कौशाम्बी, वाराणसी, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पाटलिपुत्र, बोधगया आदि स्थानों पर अशोक द्वारा बनवाये स्तूप देखे थे। कालान्तर में शुंग–सातवाहन कुषाण काल में उनका संशोधन और संवर्धन किया गया। दक्षिण भारत में प्रथम शती ई0 पू0 से तृतीय शती ई0 के मध्य, आन्ध्र सातवाहनों के काल में अमरावती एवं नागार्जुनकोण्ड जैसे महत्वपूर्ण स्तूपों का निर्माण किया गया। स्तूप निर्माण की परम्परा गुप्तकाल में भी प्रचलित रही। इस काल के अवशिष्ट स्तूपों में धमेख स्तूप एवं मीरपुर खास का ईंटों का स्तूप है। यद्यपि यह काल पौराणिक हिन्दू धर्म की उन्नति का काल था तथापि गुप्त शासकों की धार्मिक उदारता एवं सहिष्णुता के फलस्वरूप बौद्ध धर्म का भी समान रूप से विकास हुआ जिसकी पुष्टि पुरातात्विक साक्ष्यों से हो जाती है। मूर्तिपूजा की लोकप्रियता के कारण इस काल में बौद्धों ने भी स्तूपों के स्थान पर मंदिरों का निर्माण कराया जिनमें अधिकांश अब नष्ट हो गये हैं। सारनाथ स्थित मूलगन्धकुटी मंदिर एवं बोधगया का महाबोधि मंदिर गुप्तकाल का बताया जाता है। हर्ष के समय बौद्ध धर्म से संबंधित नए केन्द्र बने जिनमें नालन्दा प्रमुख था। पालराजवंश ने आठवीं से बारहवीं शती ई0 के मध्य वर्तमान बिहार, बंगाल तथा समीपवर्ती क्षेत्रों में शासन किया। पालों के काल में मैकूटभ, देवीकोट, चटगाँव, सन्नगर, फुन्नहरी, विक्रमपुर जगद्दल तथा मुर्शिदाबाद आदि स्थानों पर बौद्ध मंदिरों का निर्माण किया गया जिन्हें सुंदर बौद्ध मूर्तियों से अलंकृत किया गया। यह काल बौद्ध धर्म के पुर्नजागरण का काल कहलाता है। इसके बाद बौद्ध धर्म का भारत से उन्मूलन हो गया और उत्तर भारत में नवीन धर्म (इस्लाम) तथा नवीन संस्कृति की उन्नति हुई।

प्राक्मौर्यकालीन स्तूपों से लेकर बाहरवीं शती ई0 तक के बौद्ध मंदिरों की कला यात्रा में बौद्ध धर्म के विषय जनमानस में अत्यधिक लोकप्रिय हुए। इस बीच विदेशी प्रभाव एवं हिन्दू धर्म में प्रचलित मूर्तिपूजा के कारण स्तूपों के स्थापत्य तथा मूर्तिशिल्प पर इसका प्रभाव पड़ा। कुषाणकाल में महायान सम्प्रदाय के विकास के कारण कला में प्रथमतः बुद्ध की मूर्तियों के निर्माण की परम्परा प्रारम्भ हुई। प्रारम्भ में श्रद्धा एवं भक्तिभाव के कारण बुद्ध को इन स्तूपों में मूर्त रूप में अंकित नहीं किया गया है। भरहुत तथा साँची के स्तूपों में सारा वातावरण बौद्धमय है परन्तु बुद्ध आकार में कहीं उपस्थित नहीं है। उनके जीवन की विभिन्न घटनाओं को प्रतीकों के द्वारा अंकित किया गया है जो जनसामान्य में बहुत लोकप्रिय थे। किन्तु कुषाणों, आन्ध्र–सातवाहनों के काल के स्तूपों में बुद्ध सप्राण उपस्थित हैं और उन्हें विभिन्न हस्त एवं पादमुद्राओं में अंकित किया गया है। आगे भी यही परम्परा चलती रही। बुद्ध मानव श्रेणी से उठकर देवता की श्रेणी में आ गए और जनसामान्य में पूज्यनीय हो गये।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि बौद्ध धर्म में प्रचलित बहुत से प्रतीक और विषय उससे पहले वैदिक परम्परा में विद्यमान थे जिनको बौद्ध धर्म में न केवल स्वीकार किया गया अपितु कला में उत्साहपूर्वक अंकित भी किया गया। ललितविस्तार में अत्यन्त स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो धर्मचक्रप्रर्वतन बुद्ध ने किया उसे अनेक तथागत, अर्हत, सम्यक, संबुद्ध पूर्व में कर चुके थे। महायान बौद्ध धर्म में रुचिपूर्वक इन लीलाओं का विस्तार किया गया। विभिन्न देवी देवता जैसे श्रीलक्ष्मी, नाग, यक्ष, जिनकी परम्परा पूर्व से उपस्थित थी, बौद्धों द्वारा सहर्ष स्वीकार ली गई। देवताओं के ज्योर्तिलिंग का संबंध बुद्ध के अग्निस्कन्ध से जोड़ा जा सकता है। इन्द्र के श्वेत हस्ति ए रावत की तुलना तुषित स्वर्ग से उतरते हुए श्वेत हस्ति से की जा सकती है जो बुद्ध की माता की कुक्षि में प्रविष्ट हुआ था। पूर्णकुम्भ, पद्म अथवा पुष्कर की वैदिक परिकल्पना कमलासीन श्रीलक्ष्मी एवं गजलक्ष्मी में देखी जा

सकती है जो बुद्ध जननी मानी जाती है। अग्नि, इन्द्र, वरुण और सोम देवता चार दिशाओं के अधिपति थे। लोक धर्म (यक्ष परम्परा) के प्रभाव में यह कल्पना बदली और ये चार लोकपाल माने जाने लगे। बौद्ध स्तूपों में चार तोरणद्वारों पर इनकी मूर्तियाँ स्थापित की गई। बौद्ध धर्मचक्र विष्णु के वृत्त चक्र का ही परिणित रूप है। पौराणिक जातक कथाओं को भी बौद्ध धर्म में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बुद्ध के लोकोत्तर रूप का आधार ये वैदिक प्रतीक थे। इन प्रतीकों को स्तूप मूर्तिशिल्प में अत्यन्त उत्साहपूर्वक अंकित किया गया है और ये बौद्ध धर्म के अभिन्न अंग बन गए । स्तूप का निर्माण करने वाले इन सभी प्रतीकों के महत्व और अभिप्राय से भलीं–भांति परिचित थे। इन्हीं प्रतीकों की पुनरावृत्ति भरहुत, साँची, बोधगया, अमरावती आदि के वेदिका/तोरणों पर शिल्पांकित थे

दिव्यावदान के धर्म रुच्यवदान में स्तूप के अंगों का उल्लेख और निर्माण क्रम मिलता है। इससे पता चलता है कि सबसे पहले भूमि को नाप करके चारों पार्श्वो में चार सोपानों का निर्माण किया जाता था। तत्पश्चात क्रम से प्रथम, द्वितीय और तृतीय मेढ़ि (मेधि) का निर्माण किया जाता था। मेधि चबूतरा ही होता था, जिस पर स्तूप बनाया जाता था। इसे प्रदक्षिणापथ के लिये प्रयोग में लाया जाता था। मेधि पर अण्ड का निर्माण होता था। यह स्तूप का मुख्य अंग था जिसके आभ्यांतरिक भाग में यूपयष्टि प्रतिपादित की जाती थी। विशेष रूप से निर्मित स्थल में धातु–अवशेष प्रतिष्ठापित किये जाते थे। अण्ड के ऊपर हर्मिका और उसके ऊपर यष्टि आरोपित की जाती थी। स्तूप के चारों ओर चार कोष्ठकों का निर्माण किया जाता था। स्तूप के आंगन को रत्नशिलाओं से चुनवाया जाता था। तत्पश्चात चारों ओर के उपांगों को नापकर चार कोनों पर चार पुष्करणियाँ बनवाकर उनमें नाना प्रकार के कमल आरोपित किये जाते थे। स्तूप के चारों ओर सुरक्षा के लिये वेदिका बनाई जाती थी। जिनके तीन भाग अधिष्ठान, सूची और आलम्बन थे। समय–समय पर स्तूपों का संवर्धन भी होता रहा है

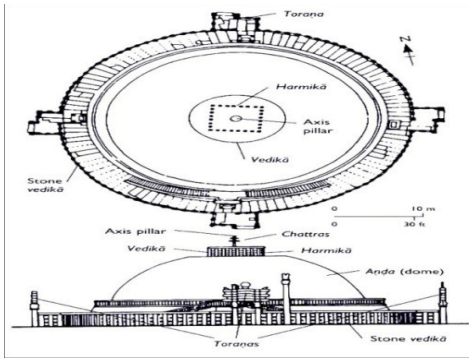

जिन स्तूपों को मूल रूप में अल्पेशाख्य कहते थे। संवर्धन के पश्चात उन्हें महेशाख्य की संज्ञा दी जाती थी। बौद्ध स्तूपों में बड़ी संख्या में जातकों, बुद्ध से सम्बद्ध घटनाओं, कथानकों का जीवन्त अंकन किया गया है।

प्राचीन भारत में विभिन्न स्तूपों के निर्माण, संवर्धन तथा संशोधन की प्रक्रिया के साथ बौद्ध धर्म के विकास के विभिन्न आयामों की कलात्मक यात्रा सुनिश्चित की जा सकती है–

भरहुत का स्तूप मध्यप्रदेश के सतना जिले में स्थित है यह स्तूप अब पूर्णतः विनष्ट हो चुका है। स्तूप की वेदिका और तोरण के कतिपय अवशेष प्राप्त होते हैं।

भरहुत की वेदिका और तोरणों की मूर्तिकला बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा से संबंधित है। बुद्ध की उपस्थिति छत्र, बोधिवृक्ष, धर्मचक्र, पादुका, भिक्षापात्र और स्तूप आदि प्रतीकों के माध्यम से प्रदर्शित की गई। एक दृश्य में बुद्ध जन्म का प्रतीकात्मक अंकन है जिसे मायादेवी के स्पप्न के रूप में प्रदर्शित किया गया है। भरहुत के मूर्तिशिल्प में कई प्रकार के बोधिवृक्षों का अंकन है जिनमें बुद्धों के नाम भी अंकित हैं –

1. अश्वत्थ या पीपल – गौतम बुद्ध का बोधिवृक्ष
2. वटवृक्ष या न्यग्रोध –कश्यप बुद्ध का बोधिवृक्ष
3. उदुम्बर – कनकमुनि बुद्ध का बोधिवृक्ष
4. पाटलिवृक्ष – बुद्ध विपस्मिन का बोधिवृक्ष
5. शालवृक्ष – बुद्धि विश्वभू का बोधिवृक्ष
6. शिरीष– बुद्ध क्रकुच्छन्द का बोधिवृक्ष

जातक कथाओं का अंकन भरहुत में बड़ी सहृदयता से हुआ है जो संख्या में 20 से अधिक हैं। इनमें मिगजातक, नागजातक, यवमझकिय जातक, मुग्गपकय जातक, लटुवा जातक, छदन्त जातक, विदुरपंडित, जातक, वेसंतर जातक आदि प्रमुख हैं। कुछ ऐतिहासिकघटनाओं का अंकन की भरहुत के मूर्तन में मिलता है। कौशल के राजा प्रसेनजित द्वारा धर्मचक्र की पूजा, अनाथपिंडक द्वारा श्रावस्ती के राजकुमार से श्रावस्ती स्थित जेतवन विहार का क्रय, जंगली हाथियों द्वारा बोधिवृक्ष की पूजा उल्लेखनीय है। ए रापत नाग को सपरिवार बोधिवृक्ष की पूजा करते हुए दिखलाया गया है। यह बात उसमें अंकित लेख से स्पष्ट हो जाती है

जिसमें कहा गया है "**ए रापतो नाग भगवतो वन्दते**" अर्थात "ए रापत नाग भगवान बुद्ध की वंदना करता है"। एक दृश्य में हाथी पर सवार राजा अजातशत्रु को लम्बे जुलूस के साथ बुद्ध की वंदना करते हुए प्रदर्शित किया गया है। मूर्ति पर **"अजातसत्तु भगवतो वन्दते"** अर्थात "अजातशत्रु भगवान बुद्ध की वंदना करता है" लिखा है। भरहुत स्तूप के पूर्वी तोरण पर एक अभिलेख अंकित है–

"सुगंनं रजे रञो गागीपुतस विसदेवस पौतेन गौतिपुतस आगरजुस पुतेन वाछिपुतेन धनभूतिन तोरणं सिलाकंमंत च उपणं"

अर्थात "शुंगो के राज्य में राजा गार्गीपुत्र विश्वदेव के पौत्र एवं गौप्तीपुत्र के पुत्र धनभूति ने तोरण का निर्माण कराया था।"

यदि वस्तुतः यहाँ तात्पर्य शुंग राजाओं से है तो ज्ञातव्य है इस तोरण को शुंग वंशी शासकों ने बनवाया था परन्तु इसके साथ ही इस वंश के संस्थापक पुष्यमित्र से सम्बद्ध धारणाओं को लेकर प्रश्न उठता है? पुष्यमित्र द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञों तथा बौद्ध ग्रन्थों द्वारा उसे बौद्ध द्वेषी प्रमाणित करने के प्रयास यदि प्रामाणिक हैं तो ए`से बौद्ध धर्म द्वेषी पुष्यमित्र के वंशजों द्वारा भरहुत स्तूप का तोरण निर्मित कराना निसंदेह असाधारण बात है।

बोधगया में बुद्ध को बुद्धत्व प्राप्त हुआ था। जिस स्थान पर उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ वहाँ पर एक पीपल का वृक्ष था। उसी वृक्ष के नीचे बोधिमण्ड आसन पर बैठकर बुद्ध ने तपस्या की थी और उन्हें संबोधि प्राप्त हुई थी। बाद में अशोक ने उसी बोधि मण्ड के ऊपर एक बोधिमंदिर बनवाया और उसमें चतुर्दिक काष्ठ वेदिका बनवायी। शुंग काल में उसे प्रस्तर से आच्छादित कर दिया गया। इसके कुछ अंश अवशिष्ट हैं जिनके स्तम्भों पर बोधिवृक्ष, धर्मचक्र और धर्मस्तम्भों का अंकन है। बोधगया में जातकों की संख्या सीमित है यथा–छदन्तजातक, पदकुसलमाणव जातक, बेस्सतंर जातक, किन्नर जातक आदि। बोधगया के मंदिर का कई बार संस्कार हुआ। इसमें गुप्तयुगीन मंदिर सबसे महत्वपूर्ण था जिसे लेख मे ंवज्रासन स्थान पर निर्मित वृहद्गन्धकुटी प्रासाद कहा है। इसका और भी संवर्धन 1035–1079 के मध्य ब्रहमदेश के धमर्यात्रियों ने किया था। उसी समय गर्भग्रह के भीतर भूमिस्पर्श मुद्रा में पद्मासन में बैठी हुईबुद्ध की प्रतिमा स्थापित की गयी।

साँची के स्मारकों में सबसे सुरक्षित साँची का महास्तूप (संख्या–1) है। यह अपने धार्मिक महत्व और शिल्प सौन्दर्य के लिये विश्वविख्यात है। इसका वर्तमान स्वरूप द्वितीय शती ई0 पू0 से लेकर पहली शती ई0 तक निर्धारित हुआ था। मौर्यस्तूप के भग्नावशेषों पर पहले शुंगकाल में बड़े–बड़े प्रस्तरफलकों से उसे आच्छादित किया गया और चतुर्दिक विशाल वेदिका खड़ी की गयी जिस पर कोई अलंकरण नहीं है। सातवाहन काल में वेदिका के चारों ओर चार तोरण द्वार निर्मित हुए जिन पर उत्कृष्ट अलंकरण किया गया। कला की दृष्टि से सांची के महास्तूप के तोरणों का अत्यधिक महत्व है। यह कला बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा से

संबंधित है।

बुद्ध के जीवन की पाँच महत्वपूर्ण घटनाओं जाति (जन्म) महाभिनिष्क्रमण, सम्बोधि, धर्मचक्र प्रवर्तन तथा महापरिनिर्वाण का पुनः पुनः अंकन तोरणों पर मिलता है। इन घटनाओं के अंकन में बुद्ध की उपस्थिति को सदैव प्रतीकों के माध्यम से अंकित किया गया है।बुद्ध जन्म का अंकन कमल या पूर्णघट से निकलते हुए कमल के रूप में किया गया है। कुछ दृश्यों में मायादेवी को पूर्ण विकसित कमल के ऊपर दिखाया गया है। कुछ में

आसन्न प्रसव माया देवी को वृक्ष की डाल पकड़े हुए खड़ी मुद्रा में दिखाया गया है। गजलक्ष्मी को भी जन्म का प्रतीक माना जाता है। महाभिनिष्क्रमण का अंकन जीन कसे हुए खाली घोड़े के रूप में किया गया है जिसके ऊपर छत्र है। संबोधि का चित्र पीपल के नीचे आसन या केवल पीपल के वृक्ष के द्वारा दर्शाया गया है। संबोधि के कुछदृश्यों में उपासक पूजा के उपहार चढ़ा रहे हैं, अथवा कुछ विशेष दृश्यों में मारधर्षण का अंकन भी है। धर्मचक्रप्रवर्तन का प्रतीकात्मक अंकन चक्र के रूप में मिलता है। वाराणसी के मृगदाव में धर्मचक्रप्रवर्तन चक्र के रूप में अंकित किया गया है। कभी चक्र को आसन और कभी स्तम्भ के ऊपर दिखाया गया है। महापरिनिर्वाण का चिन्ह स्तूप है जिसकी पूजा करते हुए उपासको को दिखाया गया है।

जहाँ साँची के सम्पूर्ण शिल्प में बुद्ध को प्रतीकात्मक रूप में अंकित किया गया है वहीं इसके शिल्प में सर्वाधिक महत्वपूर्ण वह अंकन है जहाँ बुद्ध को एक **'स्वर्ण यष्टि'** के द्वारा प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है। यष्टि के ऊपर विशाल चक्र स्थापित है। यष्टि के नीचे पद्चिन्ह हैं जिसके समीप "भगवतो पमाण लट्ठि अभिलेख अंकित हैं जिसका शब्दार्थ है "भगवान बुद्ध काा लट्ठि अथवा खम्भे के रूप में प्रमाण या मूर्त शरीर"। यह किसी प्रतिभाशाली शिल्पी की यष्टि द्वारा बुद्ध की उपस्थिति की नई कल्पना थी।

बुद्ध के अतिरिक्त साँची में सात मानुषी बुद्धों का वृक्ष प्रतीक रूप में अंकन किया गया है। बुद्ध के पूर्व जन्मों की कथाओं को भी साँची शिल्प में उत्साहपूर्वक उकेरा गया है। जातक कथाओं के अनुसार गौतम अपने वर्तमान रूप में जन्म लेने से पूर्व बोधिसत्व मानव तथा अनेक पशु रूपों में उत्पन्न हो चुके थे। इन्हीं कथाओं को साँची शिल्प में सुरुचिपूर्ण अंकित किया गया है जिनमें छदन्त जातक, महाकपि जातक, बेस्संतर जातक एवं ऋषि श्रृंग जातक आदि का अंकन प्रमुख है।

साँची शिल्प के अनेक दृश्य बुद्ध एवं बौद्ध धर्म से संबंधित ऐतिहासिक घटनाओं की सूचना भी देते हैं जैसे बिम्बसार, अजातशत्रु और बाद में अशोक द्वारा की गई बोधगया की यात्रा आदि का अंकन। साँची की वेदिका और तोरणद्वार के निर्माण में बहुसंख्यक जनता ने दान दिया था। बहुत से दानसूचक अभिलेख वेदिका पर खुदे हैं। एम0जी0 मजूमदार महोदय ने स्तूप संख्या 1, 2, 3 के कुल मिलाकर 827 लेख प्रकाशित किये थे।

स्तूप संख्या– 2 साँची का दूसरा महत्वपूर्ण स्तूप है। इसकी वेदिका में अलंकरण मिलता है जबकि महास्तूप की वेदिका सादी है। वेदिका पर उत्कीर्ण दृश्य प्रायः वैसे ही है जैसे महास्तूप के तोरण द्वारों पर है। उसमें बुद्ध के जीवन की चार प्रमुख घटनाओं को प्रतीकों द्वारा अंकित किया गया है। ये अलंकृत वेदिका स्तम्भ द्वितीय शती ई0पू0 की उत्कीर्ण कला के उत्तम उदाहरण हैं। इस स्तूप की महत्ता इस बात में है कि यहाँ दस बौद्ध भिक्षुओं की अस्थियों वाली दो प्रस्तर पेटिकाएं मिली थीं। इन पर उनके नाम अंकित हैं जो बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ अशोक द्वारा विभिन्न दिशाओं में भेजे गये थे। उनमें से कुछ ने पाटलिपुत्र की अशोक कालीन बौद्ध समिति में भाग भी लिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह अस्थि अवशेष भिन्न–भिन्न स्थानों से लाकर इस स्तूप में संग्रहीत कर दिये गये होंगे।

स्तूप संख्या– 3 आकार में अपेक्षाकृत सबसे छोटा है। इसकी वेदिका नष्ट हो चुकी है, स्तूप और एक तोरणद्वार शेष है। इस स्तूप का निर्माण काल द्वितीय शती ई0पू0 माना जाता है। वेदिका और तोरण का निर्माण बाद में किया गया। इस स्तूप का महत्व यह है कि यहाँ बुद्ध के प्रिय शिष्य सारिपुत्र और मोग्गलान के अस्थि अवशेष कनिंघम महोदय को प्राप्त हुए थे।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भरहुत से साँची तक की कला यात्रा में बौद्ध धर्म विषयक अवधारणाए ं, कथाए ं, प्रतीकों के अंकन की परम्परा समान होते हुए भी कुछ विशेष अंतर दृष्टिगोचर होता है। भरहुत की कला में

जातकों की लघुकथाओं अथवा लोककथाओं का उत्साहपूर्वक अंकन हुआ है। साँची के शिल्प में जातकों की संख्या में कमी आ जाती है। सांची का कलाकार केवल वेस्संतर, छदन्त, श्याम और महाकपि जातक की कथाओं के अंकन में ही रुचि लेता है। बुद्ध के जीवन के दृश्यों का अंकन सांची में कहीं अधिक और उनमें भी उनके प्रतिहार्य कर्मों के अंकन में अधिक उत्साह दिखाया गया है। जैसे – बुद्ध का आकाश गगन, जल संतरण और कश्यप के आश्रम में जल और अग्नि का प्रतिहार्य। साँची में ऐतिहासिक दृश्यों की संख्या भी अधिक है, जैसे राजा अजातशत्रु अथवा प्रसेनजित का बुद्ध दर्शन को आना, प्रसेनजित का श्रावस्ती के आम्रवन में आगमन, अजातशत्रु का जीवक के आम्रवन में आगमन, शुद्धोधन का बुद्ध के स्वागत हेतु नगर से बाहर जाना, अशोक द्वारा बोधगया की यात्रा आदि। इसके अतिरिक्त बुद्ध के जीवन की घटनाओं के प्रतीकात्मक अंकन की पुनरावृत्ति साँची में अधिक है।

भरहुत और साँची के स्तूप वास्तु के संवर्धन और उनके शिल्प में बौद्ध विषयों की पुनरावृत्ति से ज्ञात होता है कि उस समय बौद्ध धर्म जनसामान्य में तीव्र गति से फैल रहा था। बौद्ध धर्म की विकास यात्रा में बौद्ध स्तूपों का महती योगदान है। ये स्तूप न केवल बुद्ध के प्रति अभिव्यक्त श्रद्धा और भक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं अपितु इन स्तूपों के अवशेष बुद्ध की ऐतिहासिकता को भी प्रमाणित करते हैं।

संदर्भ :

1. ऋग्वेद, 7, 2, 11; 1, 24, 7
2. विनय पिटक (महापरिनिर्वाण सुत्त)
3. डा0 मार्कण्डेय शुक्ल, प्राचीन भारतीय कलाओं एवं औद्योगिक शिल्पों का अध्ययन, अध्याय–4
4. अश्वघोष, बुद्धचरित, 28/53
5. वही, 28/54
6. दिव्यावदान, 29/9–10
7. अवदानशतक जिल्द 1/308/1–4
8. टी0डब्लू, रीज़ डेविड्स, बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ 18, टिप्पणी
9. जे0एफ0 प्लीट, जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी, 1906, पृष्ठ 179
10. दृष्टव्य, जी० आर० शर्मा, एक्सकवेशन ऐट कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1960
11. बुद्ध चरित, 18/64; दिव्यावदान, 234/17, 241/5
12. यजुर्वेद, 4/19
13. वही, 23/48
14. वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृथिवी प्रकाशन, 1971, पृष्ठ 55
15 अथर्ववेद, 10/4/43
16.वासुदेवशरण अग्रवाल, वही, पृष्ठ 59
17.ऋग्वेद, 1/155/6
18.दिव्यावदान, 150/31, 32; 79/27
19. वही, 151/1
20. वही, 151/1–2
21. वही, 151/2
22. वही, 151/3
23. वही, 151/2–3
24. वही, 151/3
25. वही, 151/5–7
26. वही, 151/7
27. वही, 151/7
28. वही, 136/27
29. वही, 136/27–28
30. वही, 136/97
31. वही, 136/27–28
32. वही, 150/9–10
33. वही, 151/15–16
34. दृष्टव्य, कनिंघम, द स्तूप आफ भरहुत, भारतीय संस्करण, वाराणसी 1962
35. विनय कुमार राव, बौद्ध कला में नारी, दिल्ली 2006 पृष्ठ 19; वासुदेवशरण अग्रवाल, वही पृष्ठ 143, चित्र सं0 197
36. आर० सी० शर्मा, भरहुत स्कल्पचर, नई दिल्ली 1994,पृष्ठ 16
37. वासुदेवशरण अग्रवाल, वही, पृष्ठ 148, चित्र 211
38. वही, चित्र 212
39. परमेश्वरी लाल गुप्त, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख खण्ड–1 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1988, पृष्ठ 88–90
40 वासुदेवशरण अग्रवाल, वही, पृष्ठ 183
41. दृष्टव्य, सर जान मार्शल, मान्युमेंट्स ऑफ साँची, 3 वाल्यूम्स, लंदन 1940 तथा उसका प्रथम भारतीय संस्करण, नई दिल्ली 1982
42. एस० डी० त्रिवेदी(संपा०) शुंग आर्ट, इलाहाबाद,1991 पृष्ठ 42
43. ए० एल० श्रीवास्तव, भारतीय कला, इलाहाबाद, 1994, पृष्ठ 54, चित्र 56
44. वासुदेवशरण अग्रवाल, वही, पृष्ठ 173, चित्र 259
45. वही, पृष्ठ 172, चित्र 258, 260
46. वही, पृष्ठ 167, चित्र 251
47. मार्शल, साँची, भाग–2 फलक, 27
48. वासुदेवशरण अग्रवाल, वही, पृष्ठ 171
49. वही, पृष्ठ 177
50. वही, पृष्ठ 225

चित्र

https://en.wikipedia.org/wiki/Bharhut
https://app.emaze.com/@AQOTIIFC#2
https://en.wikipedia.org/wiki/Mahabodhi_Temple
en.wikipedia.org.wiki/
wikipedia.org/wiki/Sanchi
en.wikipedia.org/wiki